१५ कर्म एवं लेश्या

☐ श्री चांदमल करणावट

संसार के प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य बन्धनों से मुक्त होना और दुःखों से छुटकारा पाना है। किसी भी प्राणी को दुःख अभीष्ट नहीं होता, सभी प्राणी सुख चाहते हैं, ऐसा सुख जो कभी दुःख रूप में परिणत न हो। इस स्थिति को दूसरे शब्दों में मोक्ष या मुक्ति कहा गया है।

जैन-दर्शन में तत्त्वार्थ सूत्र के रचयिता आचार्य उमास्वाति ने मोक्ष की परिभाषा दी है—'**कृत्स्न कर्मक्षयो मोक्षः**' अर्थात् समस्त कर्मों का नष्ट हो जाना ही मोक्ष है। इन कर्मों के क्षय से ही शाश्वत सुख की स्थिति प्राप्त होती है। अब यह समझना आवश्यक है कि यह कर्म क्या है जो आत्मा को बन्धनों में जकड़ देता है ? उसके क्षय से किस प्रकार आत्मा सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनती है तथा इस कर्म का और लेश्या का क्या सम्बन्ध है ?

कर्म क्या है ?

जैन-दर्शन में कर्म का अर्थ क्रिया करना नहीं है। यह एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है राग-द्वेषादि परिणामों से एकत्रित कार्मण वर्गणा के पुद्गलों का आत्मा के साथ बंध जाना। आत्मा कर्म करते हुए शुभ और अशुभ पुद्गलों का बंध करती है और उसके फलस्वरूप उसके शुभाशुभ फलों को भोगते हुए संसार में चक्कर लगाती रहती है अथवा जन्म-मरण करती रहती है। वह मुक्त दशा को प्राप्त नहीं होती।

कर्म के एक अपेक्षा से दो भेद किये गए हैं—(१) द्रव्य कर्म एवं भाव कर्म। द्रव्य कर्म पुद्गल रूप हैं। भाव कर्म इन पुद्गलों को एकत्र करने में कारणभूत शुभाशुभ विचार हैं। द्रव्य कर्म, भाव कर्म के लिये एवं भाव कर्म द्रव्य कर्म के लिये कारणभूत है। दोनों ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। जैन-दर्शन की एक उक्ति बहुत प्रसिद्ध है—'**कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि**' अर्थात् कर्मों का फल भोगे बिना उनसे छुटकारा नहीं मिलता। निकाचित कर्मों की अपेक्षा यह उक्ति सही है क्योंकि निकाचित कर्म का विपाक या फल आत्मा को भोगना ही होता है। परन्तु निधत्त प्रकार के कर्मों में पुरुषार्थ के द्वारा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा परिवर्तन ला सकती है। और केवल प्रदेशोदय द्वारा ये कर्म क्षय हो सकते हैं।

'जैन-दर्शन : स्वरूप और विश्लेषण' में श्री देवेन्द्र मुनि का कथन कितना सार्थक है। उन्होंने लिखा है—'संसार को घटाने-बढ़ाने का आधार पूर्वकृत कर्म की अपेक्षा वर्तमान अध्यवसायों पर विशेष आधारित है।' यहीं कर्म के साथ लेश्याओं का सम्बन्ध जुड़ जाता है। इसी प्रकार भावकर्म के रूप में लेश्याएँ कर्म-बन्ध में आधारभूत भूमिका निभाती हैं।

लेश्या क्या है ?

जिनके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है, जो योगों की प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है तथा मन के शुभाशुभ भावों को लेश्या कहा गया है। दूसरे शब्दों में योग और कषाय के निमित्त से होने वाले आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहा गया है, जिससे आत्मा कर्मों से लिप्त हो। अपर शब्दों में लेश्या एक ऐसी शक्ति है जो आने वाले कर्मों को आत्मा के साथ चिपका देती है। यह शक्ति कषाय और योग से उत्पन्न होती है। इन परिभाषाओं का सार यही है कि लेश्या हमारे शुभाशुभ परिणाम या भाव हैं जिनमें कषाय और योग के कारण ही स्निग्धता उत्पन्न होती है जो हमारे चारों ओर फैले हुए कर्म पुद्गलों को आत्मा के चिपका देती है। जैन-दर्शन में इसीलिये कहा भी गया है—**'परिणामे बन्ध'** अर्थात् शुभाशुभ कर्मों का बन्ध आत्मा के परिणामों पर निर्भर है। लेश्या आत्मा के ऐसे शुभ-अशुभ परिणाम है जो कर्मबन्ध का कारण बनते हैं। **'पन्नवणासूत्र'** के १७वें पद में लेश्याओं का वर्णन करते हुए शास्त्रकार ने कर्मबन्ध में उनको सहकारी कारण बतलाया है। और इस दृष्टि से हमारी आत्मा के शुभाशुभ विचारों में तीव्रता और मन्दता अथवा आसक्ति और अनासक्ति होने पर कर्मबन्ध भी उसी प्रकार का भारी या हल्का होता है।

लेश्या और कर्म का सम्बन्ध :

कर्म और लेश्या की परिभाषा जानने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि लेश्या और कर्म में कारण और कार्य का सम्बन्ध है। लेश्याएँ या आत्मा के विभिन्न परिणाम स्निग्ध और रुक्ष दशा में तद्तद् रूप में कर्मबन्ध का कारण बनते हैं। यदि कोई कार्य करते हुए हमारी उसमें आसक्ति हुयी तो कर्मबन्ध जटिल होगा और अनासक्त भाव से कार्य करते हुए आत्मा के साथ कर्मों का बन्ध मन्द, मन्दतर और मन्दतम होगा।

कर्मबन्ध के भिन्न-भिन्न विवक्षाओं से अलग-अलग कारण बतलाए हैं। परन्तु मुख्यतः राग-द्वेष की वृत्तियाँ ही कर्म का बीज मानी गयी हैं। कहा भी

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

गया है—**'रागोयदोसो वियकम्मवियम्'** ये राग और द्वेष की वृत्तियाँ योग का ही रूप हैं। और कषायों को समन्वित किये हुए हैं।

लेश्याओं के प्रकार और कर्मबन्ध :

लेश्याएँ छः हैं—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या एवं शुक्ल लेश्या। इनमें प्रथम तीन अशुभ और अन्तिम तीन शुभ मानी गयी हैं।

(१) **कृष्ण लेश्या**—काजल के समान वाले वर्ण के इस लेश्या के पुद्गलों का सम्बन्ध होने पर आत्मा में ऐसे परिणाम उत्पन्न होते हैं जिनसे आत्मा मिथ्यात्व आदि पाँच आस्रवों में प्रवृत्ति करती, तीन गुप्ति से अगुप्त रहती, छः काय की हिंसा करती है। वह क्षुद्र तथा कठोर स्वभावी होकर गुण-दोष का विचार किये बिना क्रूर कर्म करती रहती है।

(२) **नील लेश्या**—नीले रंग के इस लेश्या के पुद्गलों का सम्बन्ध होने पर आत्मा में ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है कि जिससे ईर्ष्या, माया, कपट, निर्लज्जता, लोभ, द्वेष तथा क्रोध आदि के भाव जग जाते हैं। ऐसी आत्मा तप और सम्यग्ज्ञान से शून्य होती है।

(३) **कापोत लेश्या**—कबूतर के समवर्णी पुद्गलों के संयोग से आत्मा में बोलने, विचारने व कार्य करने में वक्रता उत्पन्न होती है। नास्तिक बनकर आत्मा अनार्य प्रवृत्ति करते हुए अपने दोषों को ढंकती है, दूसरों की उन्नति नहीं सह सकती। चोरी आदि के कर्म करती है।

उक्त तीनों लेश्याएँ अशुभ होने से आत्मा की दुर्गति का कारण बनती हैं। ऐसे जीव नरक और तिर्यंच गति में जाते हैं यदि जीवन के अन्तिम काल में उनके परिणाम इतने अशुभ हों।

(४) **तेजो लेश्या**—इस लेश्या के सम्बन्ध से आत्मा में ऐसे परिणाम उत्पन्न होते हैं कि आत्मा अभिमान का त्याग कर मन, वचन और कर्म से नम्र बन जाती है। गुरुजनों का विनय करती, इन्द्रियों पर विजय पाती हुई पापों से भयभीत होती है और तप-संयम में लगी रहती है।

(५) **पद्म लेश्या**—इस लेश्या में स्थित आत्मा क्रोधादि कषायों को मन्द कर देती है। मितभाषी, सौम्य और जितेन्द्रिय बनकर अशुभ प्रवृत्तियों को रोक देती है।

(६) **शुक्ल लेश्या**—इस लेश्या के प्रभाव स्वरूप आत्मा आर्त्त, रौद्र,

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान त्याग कर धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान का अभ्यास करती है। अल्पराग या वीतराग होकर प्रशान्त चित्त वाली होती है।

उक्त अन्तिम तीन लेश्याएँ शुभ, शुभतर, शुभतम और शुद्ध होने से आत्मा की सुगति का कारण बनती हैं। इन परिणामों में रमण करते हुए आत्मा उत्थान करती है। उपर्युक्त परिणामों में विचरने वाला आत्मा तदनुरूप कर्मों का बन्ध करता और उन्हें भोगता है।

लेश्याओं के दो प्रकार हैं—द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या। पदार्थों के शुभाशुभ वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श और शब्द आदि से आत्मा में शुभाशुभ विचार उत्पन्न होते हैं। शुभ शब्द, वर्ण, रूप आदि को देखकर-सुनकर और गन्ध, स्पर्श को अनुभव करके आत्मा में राग दशा उत्पन्न होती है। यह वर्णादि आत्मा को अनुकूल लगते हैं और आत्मा उनमें आसक्त बनकर कर्मों में बन्ध जाती है। इसके विपरीत अशुभ वर्ण, गन्ध आदि वाले पदार्थों को देखकर और अनुभव करके उनके प्रति घृणा उत्पन्न होती है, द्वेष भाव जाग्रत होता है जिससे आत्मा अशुभ कर्मों से जकड़ जाती है। इस प्रकार ये भाव लेश्याएँ अर्थात् आत्मा के शुभाशुभ परिणाम कर्म-बन्ध के मूल कारण बनते हैं।

लेश्याओं का वैज्ञानिक विश्लेषण :

मुनि नथमलजी ने अपनी पुस्तक **'समाधि की खोज'** प्रथम भाग के पृ. १५७ में लेश्या व कर्म सम्बन्धी जो विवेचन किया है वह लेश्या और कर्म-बन्ध का वैज्ञानिक विश्लेषण है। उन्होंने लिखा है, "जब लेश्या बदलती है तब परिवर्तन घटित होता है। जब मन में तेजो लेश्या और पद्म लेश्या के भाव आते हैं तब तैजस शरीर से स्राव होता है और वह हमारी ग्रन्थियों में आता है। वह सीधा रक्त के साथ मिल जाता है और अपना प्रभाव डालता है। इन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के रस हमारे समूचे स्वभाव को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति का चिड़-चिड़ा होना या प्रसन्न होना, क्रोधी होना या शान्त होना, ईर्ष्यालु या उदार होना इन ग्रन्थियों के विभिन्न स्रावों पर निर्भर है। इस प्रकार एक जैविक एवं रासायनिक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि हमारे शुभाशुभ परिणामों से किस प्रकार रासायनिक क्रियाएँ घटित होती हैं और किस प्रकार वे हमारे संवेगों को प्रभावित करती हैं।

कर्म की विभिन्न अवस्थाएँ एवं लेश्याओं के प्रभाव :

'ठाणांग' सूत्र में एक चतुर्भंगी है—(१) एक कर्म शुभ और उसका विपाक भी शुभ, (२) कर्म शुभ किन्तु विपाक अशुभ, (३) कर्म अशुभ परन्तु विपाक शुभ, (४) कर्म अशुभ और विपाक भी अशुभ। इस चतुर्भंगी को देखकर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म सिद्धान्त की मान्यता वाले आश्चर्य करेंगे कि कर्म शुभ होते हुए विपाक अशुभ कैसे ? और कर्म अशुभ होते हुए विपाक शुभ कैसे ?

यहाँ कर्म की विभिन्न अवस्थाओं की जानकारी करा देना आवश्यक है जो लेश्याओं के फलस्वरूप उत्पन्न होती हैं। कर्म की मुख्य अवस्थाएँ ग्यारह हैं—(१) बन्ध, (२) सत्ता, (३) उद्वर्तन या उत्कर्ष, (४) अपवर्तन या अपकर्ष, (५) संक्रमण, (६) उदय, (७) उदीरणा, (८) उपशमन, (९) निधत्ति, (१०) निकाचित व (११) अबाधाकाल। इनमें उद्वर्तन, अपवर्तन एवं संक्रमण की महत्त्वपूर्ण अवस्थाएँ लेश्याओं का ही परिणाम हैं। जिस परिणाम विशेष से जीव कर्म प्रकृति को बाँधता है उनकी तीव्रता के कारण वह पूर्व बद्ध सजातीय प्रकृति के दलिकों को वर्तमान में बँधने वाली प्रकृति के दलिकों में संक्रान्त कर देता है। बध्यमान कर्म में कर्मान्तर का प्रवेश इसी संक्रमण का कारण है जो कर्म के बन्ध और उदय में अन्तर उपस्थित कर देता है, उसे बदल देता है।

उद्वर्तन या उत्कर्ष :

आत्मा के साथ आबद्ध कर्म की स्थिति और अनुभाग या रस आत्मा के तत्कालीन परिणामों के अनुरूप होता है। परन्तु इसके पश्चात् की स्थिति विशेष अथवा भाव विशेष के कारण पूर्व बद्ध कर्म स्थिति और कर्म की तीव्रता में वृद्धि हो जाना उद्वर्तन है। लेश्या या आत्मा के परिणाम से पूर्वबद्ध स्थिति और रस अधिक तीव्र बना दिया जाता है।

अपवर्तन या अपकर्ष :

पूर्वबद्ध कर्म की स्थिति एवं अनुभाग को कालान्तर में नवीन कर्मबन्ध करते समय न्यून कर देना अपवर्तन है। यह आत्मा के नवीन बध्यमान कर्मों के समय के परिणामों में शुद्धता आने से घटित होता है। इस प्रकार कर्म अशुभ होते हुए विपाक शुभ हो जाता है। और कर्म शुभ होते हुए विपाक अशुभ हो जाता है। यह आत्मा का पुरुषार्थ ही है और उसकी प्रबल शुद्ध विचारधारा है जिससे आश्चर्यकारी परिवर्तन घटित होते हैं।

हमारा लक्ष्य अलेशी बनना :

जब तक लेश्याएँ हैं तब तक परिणामों की विविधता रहेगी, अतः साधक का लक्ष्य होता है कि वह अलेशी बन सके। यह स्थिति साधना और वैराग्य भाव से उत्पन्न हो सकती है। लेश्याओं का परिणमन शुभतर लेश्याओं में करने के लिये स्वाध्याय और ध्यान आवश्यक अंग हैं। समभाव में रमण करना, अनासक्त भावों से जीवन व्यवहार करना तथा इन पर नियन्त्रण का अभ्यास करते रहना भव्यात्माओं के लिये अलेशी बनने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है और कर्म-बन्ध की परम्परा को सदा-सदा के लिये खत्म कर सकता है। और यही शाश्वत सुख का राजमार्ग है। □

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org